

1000

नीला कवर

लाल स्याही



(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22

अप्रैल-2012

अंक-4



प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346



(1936-2009)

प्रार्थना

(Prayer)

डॉ० शम्भू नाथ

ईश्वरीय शक्ति (Bliss) या आत्मबल (Will Power) या चेतना शक्ति (Consciousness) या स्वान्तः सुख (Self Realization) की ताकतः सभी पर्यायवाची हैं

उपरोक्त शक्ति ब्रह्मलोक की शक्ति है: मृत्युलोक की शक्ति नहीं।

अतः यह समझना कितना आसान होगा: कि इस शक्ति का लाभ सबसे ज्यादा आन्तरिक जगत को होगा। हमारा मन भी आन्तरिक जगत में है। आन्तरिक जगत, मन का अपना घर (Home) है।

East or West : Home is the Best.

आन्तरिक जगत का शक्तिदाता भावातीत क्षेत्र (Transcendental Field) है

और यह भावातीत क्षेत्र आन्तरिक जगत का सूर्य है।

मन आन्तरिक जगत की जमीन है:

हमारे मन की इच्छाएं ब्रह्मलोक के बीज हैं।

हर प्राणी ब्रह्मलोक का पेड़ है और प्राणियों के जीवन के अलग-अलग पहलू की इच्छाओं की पूर्ति: उपरोक्त ब्रह्मलोक के पेड़ों के फल हैं।

इस जमीन के पेड़ मृत्युलोक के पेड़ हैं: और यही कारण है कि आज के वैज्ञानिक पेड़ों में भी प्राण देखने में समर्थ हैं। यह समानता केवल इसीलिए है: क्योंकि प्राणी और पेड़ अलग-अलग लोक के पेड़ हैं। ब्रह्मलोक और मृत्युलोक के क्षेत्र की भिन्नता के कारण:

ब्रह्मलोक के एक ही पेड़ में, एक से ज्यादा तरह के फल होते हैं। अब यह समझना आसान होगा कि:

ब्रह्मलोक की शक्ति का लाभ: सबसे पहले और सबसे ज्यादा: मन को मिलेगा और इसके पश्चात् मन की वस्तुओं

को। दूसरे शब्दों में हमारी इच्छाओं को। आत्मशक्ति जमीन रूपी मन की खाद है। इसलिए इच्छाओं को (जोकि मन में बीज के रूप में हैं), इच्छापूर्ति की ओर: होनी की शक्ति के माध्यम से ले जाती है।

हर शक्ति का लाभ उठाने वाले के लिए यह आवश्यक है: कि वह शक्ति प्राप्ति का रास्ता या शक्तियों को संचित करने का रास्ता जाने। लेकिन किसी भी शक्ति का संचय या प्राप्ति के उपरान्त: यदि वह उसे अपने जीवन के मनचाहे पहलू में मनमाने तरीके से इस्तेमाल करने की कला नहीं जानता, तो वह इस शक्ति की प्राप्ति और संचय का पूरा लाभ नहीं उठा पाएगा।

हमारे द्वारा बताया हुआ ध्यान (Meditation) का रास्ता हर व्यक्ति के मन में अध्यात्म की शक्ति पिरोने में मदद करेगा।

जो इस अभ्यास के रास्ते पर जिस स्तर की सिद्धि पा लेगा (कहने का अर्थ है कि कम से कम समय में: गहरे से गहरा आराम लेने में जितना निपुण हो जाएगा), वह उसी अनुपात में कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा शक्ति मन में पिरोने में सफल होगा।

योगस्थ कुरु कर्माणि

हर व्यक्ति को ध्यान के उपरान्त कर्म और क्रियाओं के क्षेत्र में आना पड़ता है। जब तक हमारा मन इस शक्ति से तर-बतर नहीं हो जाता: तब तक हमारी सारी इच्छाओं को इतनी शक्ति नहीं मिल पाती, कि उसकी हर इच्छा पूर्ण हो सके। ऐसी अवस्था में हर मनुष्य के अन्दर (अपने जीवन के अलग-अलग पहलुओं की उत्तेजनाओं के आधार पर), मन में किसी विशेष कार्य के लिए यह आने लगता है: कि मेरा यह काम पहले होना चाहिए, बाकी काम यदि बाद में हों, तो भी कोई हर्ज नहीं। अध्यात्म के साधकों को यह सिखाया जाता है: कि ऐसी अवस्था में वे अपनी उस विशेष इच्छा की पूर्ति के लिए प्रार्थना करें।

सिद्धांत तो यह है: कि ध्यान के अभ्यास से मन में आत्म-शक्ति संचित होती है: और तरह-तरह के संकल्प के माध्यम से यह शक्ति जीवन के किसी विशेष पहलू में उतारी जा सकती है।

यदि कोई व्यक्ति संचय करने की कला में बहुत निपुण नहीं है: और केवल खर्च करने की कला में निपुण है: तो यह भी हो सकता है कि किसी बहुत बड़े संकल्प के कारण उसकी किसी विशेष इच्छापूर्ति में आत्मधन इतना खर्च हो जाये, कि जीवन के दूसरे पहलू सूखने लगें।

इस बात को समझने के लिए हुमायूं को स्वस्थ बनाने के लिए बाबर के ऐतिहासिक संकल्प का उदाहरण है।

सत्यवान के प्राण बचाने के लिए अध्यात्म शक्ति का ही प्रयोग सावित्री ने भी किया, लेकिन वह उच्च स्तर की योगिन थी: इसलिए उसके जीवन के अलग-अलग पहलू नहीं सूखे।

हमारे अध्यात्म के ज्ञान के अनुसार अनन्त स्तर के संकल्प हैं:

और सारे संकल्प किसी न किसी प्रार्थना के रूप में ही होते हैं।

जिन शक्तियों से आज का एक साधारण मनुष्य भली-भांति परिचित है: मृत्युलोक की शक्तियां हैं, और ईश्वरीय शक्ति, ब्रह्मलोक की शक्ति है। इसीलिए इनके संचय और प्रयोगात्मक कलाओं की विधियाँ भी भिन्न हैं।

अध्यात्म की शक्ति: ध्यान के नियमित अभ्यास द्वारा संचित होती है और तरह-तरह की प्रार्थनाओं के माध्यम से जीवन के अलग-अलग पहलुओं में खर्च होती है।

इसीलिए समाज में अध्यात्म के जो शिक्षक इस शक्ति को संचित करने में बहुत सफल नहीं हो पाए: उन्होंने यह सिखाना शुरू कर दिया कि इस शक्ति का खर्च भी जीवन में कुछ कम होना चाहिए। इसीलिए समाज में कुछ ऐसे लोग भी पाए जाते रहे हैं, जिन्होंने यह सिखाया कि ईश्वर से मांगना उच्चस्तर (High Standard) के साधकों का काम नहीं है।

लेकिन जो आध्यात्मिक गुरु इस शक्ति के संचय में और इसके साथ-साथ जीवन के अलग-अलग पहलुओं में इस शक्ति के प्रयोग में बहुत कुशल हुए: वे कहते रहे कि यदि ईश्वर से भी न मांगें, तो किस से मांगें?

इसका नतीजा यह निकला कि समाज के ज्यादातर लोग इस संशय में पड़े: कि पता नहीं क्या ठीक है और क्या गलत?

प्रार्थनाओं का चलन हर युग में रहा। अधिकतर कमजोर: शक्तिशाली व्यक्तियों से प्रार्थना करते रहे हैं और शक्तिशाली पुरुष शक्तिहीन पुरुषों पर दया दिखाते रहे हैं।

आज के युग के ज्यादातर मनुष्य ईश्वर को भी एक प्राणी मानकर उनसे प्रार्थना करने लगे और दया की उम्मीद करने लगे।

कुछ लोगों को बुद्धि के स्तर पर भी यह बात समझ में नहीं आयी। समाज में यह मजाक चलने लगा कि शायद ईश्वर भी, मनुष्य की तरह-तरह की चापलूसियों से (दूसरे मनुष्यों की तरह) प्रसन्न हो जाता है और अपनी दया दिखा देता है। इसीलिए कुछ बड़े-बड़े संकल्पों का भी समाज में उपहास होने लगा और समाज में इस रास्ते पर चलने वाले व्यक्ति: ऐसे उपहास करने वाले व्यक्तियों का हमेशा से विरोध करते रहे। लेकिन सत्य तो यह है कि ब्रह्मज्ञान की शिक्षा की कमी में समाज के दोनों वर्गों के प्राणी यह नहीं जानते कि ब्रह्मलोक की शक्ति का ‘संचय और व्यय की कला’, मृत्युलोक की शक्तियों के ‘संचय और व्यय की कलाओं’, से बिल्कुल भिन्न है। इसीलिए समाज में इस तरह के संशय फैले हुए हैं।

समाज के उपरोक्त दोनों वर्गों के लोगों में से एक वर्ग **नास्तिक** व्यक्तियों के नाम से जाना जाने लगा और दूसरे **आस्तिक** व्यक्तियों के नाम से।

सत्य मात्र इतना है: कि दोनों वर्गों के व्यक्ति अज्ञानी (गलतफहमी के शिकार) हैं और मायावी दलदल में फंसे हैं। जब **आस्तिक** व्यक्तियों में से कोई समाज में आध्यात्मिक शिक्षक बन जाता है: तो वह भी प्रकाश रूपी ब्रह्मज्ञान फैलाने की बजाय मायावी अंधेरा (Ignorance) फैलाने लगता है।

शक्तिदाताओं की पूजा समाज में हमेशा हुई। उदाहरण के लिए सूर्य भगवान की पूजा, ग्रहों की पूजा, गंगा-यमुना जैसी बड़ी-बड़ी नदियों की पूजा इत्यादि। कुछ लोग समझते हैं कि यदि हम इनसे प्रार्थना करेंगे: तो ये हमें अवश्य कुछ देंगे। समाज में ऐसे व्यक्ति भी पाए जाते हैं: जो उपरोक्त वर्ग के व्यक्तियों का उपहास करते हैं: कि ये शक्तिदाता तो हैं, लेकिन प्राणी नहीं। इसलिए वे सोचते हैं: कि ये शक्तिदाता न तो मेरी बात समझने योग्य हैं और न अलग-अलग व्यक्तियों को अलग-अलग सुख देने योग्य हैं। इसलिए समाज में ऐसे शक्तिदाताओं से प्रार्थना करने वालों का उपहास करने वाला एक वर्ग रहता है: और ऐसे लोग समाज में **नास्तिक** नाम से जाने जाते हैं।

पूजा का अर्थ है : वह कर्म जिसके माध्यम से पूजा करने वाली जीवात्मा का उत्थान हो, पूजा करने वाले के जीवन के अलग-अलग पहलू की इच्छा पूर्ति शक्ति बढ़े और पूजा करने वाले के चारों तरफ के वायु मण्डल में धीरे-धीरे सत्, रज और तम पर हावी होने की दिशा में अग्रसर हो। जिससे कि गीता (3.11 और 3.12) के अनुसार, देवताओं का उत्थान हो सके और वे पूजा करने वालों के प्रिय भोगों को बिना मांगे दें :-

मख से करो तुम तुष्ट सुरगण, वे करें तुमको सदा।

ऐसे परस्पर तुष्ट हो, कल्याण पाओ सर्वदा॥

मख तृप्त हो सुर कामना पूरी करेंगे नित्य ही।

उनका दिया उनको न दे, जो भोगता: तस्कर वही॥

तुम लोग इस **यज्ञ** के द्वारा देवताओं को उन्नत करो और वे देवता तुम लोगों को उन्नत करें। इस प्रकार निःस्वार्थ भाव से एक दूसरे को उन्नत करते हुए: तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त हो जाओगे। (3.11)

यज्ञ के द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुम लोगों को बिना मांगे ही: इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिये हुए भोगों को; जो पुरुष उनको बिना दिये भोगता है, वह चोर ही है। (3.12)

ईश्वर स्वयं सभी प्रकार के यज्ञों के भोक्ता हैं-

भोक्तारं यज्ञत पसाम्।

अतः समस्त यज्ञों का मुख्य प्रयोजन यज्ञपति को प्रसन्न करना है। इस से प्रकृतिक पदार्थों का अभाव नहीं रहता। मनुष्य जीवन शुद्ध हो जाता है। अतः स्मृति के सूक्ष्म तन्तु शुद्ध होते हैं और वह मुक्ति मार्ग का चिन्तन कर सकता है। इस तरह भावातीत (Transcendental) चेतना तक पहुँचता है, जो आज के समाज के लिए सर्वाधिक आवश्यक है।

सब यज्ञ अन्ततः ईश्वर को ही अर्पित किए जाते हैं।

अंततः इस का ध्यय उत्तरोत्तर दिव्य पद प्राप्त करना है।

चोरों का समाज कभी सुखी नहीं रह सकता, क्योंकि उनका कोई जीवन लक्ष्य नहीं होता। उन्हें तो केवल इन्द्रिय तृप्ति की चिन्ता रहती है। भावातीत सिद्धांतों (Transcendental Theory) को अंगीकार करने के लिए संसार का कोई भी व्यक्ति ‘**ध्यान-योग**’ द्वारा इस यज्ञ को सम्पन्न कर सकता है। यहां ‘**यज्ञ**’ का तात्पर्य ‘**ज्ञान यज्ञ**’ से है। हर प्राणी का सूक्ष्मतम क्षेत्र: भावातीत क्षेत्र है और यही आत्मशक्ति का हवनकुण्ड है। द्रव्य यज्ञों में मन हाथ और पदार्थों की मदद लेता है, लेकिन

सूक्ष्म यज्ञ में मन स्वयं विचरण करके आत्मशक्ति के हवनकुण्ड में अपने बन्धनों को अर्पित करता है। आत्मशक्ति में भी एक स्वतः सिद्ध अग्नि होती है, इसलिए आत्मशक्ति

के हवनकुण्ड में स्थूल यज्ञ की तरह अग्नि स्थापित करने के लिए किसी पदार्थ की मदद नहीं लेनी पड़ती।

हर प्राणी केवल तभी तक जीवित है, जब तक उसके शरीर में एक गर्मी है। हर जीवात्मा जब शरीर त्याग देती है, तब त्यागे हुए शरीर को हम कहते हैं कि शरीर ठण्डा हो गया है: इस बात का प्रमाण है कि आत्म-शक्ति में अग्नि है। जिस प्रकार से द्रव्य यज्ञ में जब मनुष्य मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि में हवन सामग्री अर्पित करता है, तब हवनकुण्ड में अग्नि की लपटें बढ़ने लगती हैं।

बिल्कुल इसी तरह जब सूक्ष्म यज्ञ में मन आत्मशक्ति के हवनकुण्ड में अपने पर पड़े हुए बन्धनों (संस्कारों) को अर्पित करता है: तब आन्तरिक जगत में भी अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है और यह अग्नि ही हमारे जीवन के अनन्त पहलुओं को सुखी करने में सक्षम है।

जीवन में इस सूक्ष्म यज्ञ की ज्यों-ज्यों कमी होने लगती है। समय बीतने के साथ प्राणी इन समस्याओं से सम्बन्धित चिन्ताओं से ग्रस्त होने लगता है। इस तरह से यह समझना कितना आसान है कि मात्र इस सूक्ष्म यज्ञ (**Meditation**) की कमी में ही जीवन का उत्थान रुक जाता है और पतन शुरु हो जाता है। आत्म-उत्थान के रास्ते को ही ज्ञान यज्ञ कहते हैं।

जो साधक ध्यान का नियमित अभ्यास कर रहे हैं, वे जानते हैं: कि उनके मन में पिरोई हुई आत्मशक्ति बढ़ रही है। यही जीवात्मा के उत्थान का अर्थ है। साधक ध्यान के अभ्यास के बाद, क्रियाओं के क्षेत्र में भी आते हैं। उनके विविध संकल्प, ध्यान के अभ्यास द्वारा संचित ईश्वरीय शक्ति को अपनी इच्छाओं के क्षेत्र में उतारने की एक वैज्ञानिक कला है। साधक अच्छी तरह जानते हैं: कि जब मन ध्यान के बाद क्रियाओं के क्षेत्र में

आता है, तब वायु मण्डल की शुद्धि स्वतः होती है: की नहीं जाती। वायु मण्डल की यह शुद्धि साधक और साधक के सम्पर्क में आने वाली समस्त चेतनाओं के बीच में सामंजस्य बढ़ाती है: चाहे चेतना वायु, अग्नि, पृथ्वी, ग्रह, वनस्पति की हों: या निर्जीव वस्तुओं की हो, या किसी प्राणी की हो।

इस तरह से हम देखते हैं कि प्रार्थनायें: पूजा से जुड़ी हुई हैं। (Prayers are related to Worship). उपरोक्त जीवन ही आध्यात्मिक जीवन है।

आत्म दर्शन

✍ श्री जय राम दास (093543-11862)

1333, सैक्टर 13, हिसार-125005

आत्म दर्शन (Self Realization) मायने किसी कल्पित आत्मा का दर्शन नहीं। आत्म-दर्शन मायने: स्व: दर्शन, सत्य दर्शन। अपने बारे में जो सच्चाई है: उनका आन्वेषण अनुसंधान। जिस के सहारे साधक अपने भीतर काया और चित्त के क्षेत्र में अस्थाई परिवर्तनशील स्वभाव वाली ऐन्द्रिय अनुभूतियों का दर्शन करते हुए: इन्द्रियातीत, नित्य, शास्वत, ध्रुव, परम सत्य का साक्षात्कार कर लेता है। और इस उपक्रम में अपने मन पर पड़े विकारों (संस्कारों) से सहज ही छुटकारा पा लेता है। इस के लिए करना कुछ भी नहीं होता: केवल देखना यानि अनुभव करना (Self Realization) होता है।

हमारे पास शरीर है और चित्त है 1. शरीर जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि परमाणुओं से बना है। और चित्त, (विज्ञान, संज्ञा, वेदना, संस्कार), यानी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार: इस के चार भाग हैं। काया और चित्त के सस्पर्श से भौतिक ज्ञान और चैतसिक ज्ञान उत्पन्न होता रहता है और राग, द्वेष, मोह, जागते रहते हैं। इन्हीं साक्षी भाव, प्रयास रहित और तनाव

रहित हो कर, जानते रहें: अपने आप उत्पन्न हो हो कर समाप्त होते चले जाते हैं। इस में करना कुछ भी नहीं होता।

अपने आप जो हो रहा है: ‘आपो आप निरंजन सोई।’ □

प्रकृति, पुरुष तथा चेतना

(सन्यासी गीता)

मन बुद्धि इन्द्रिय साथ हों: क्षेत्र कहावे देह।
इच्छा सुख दुःख आत्मज्ञान, द्वेष धीरता येह॥
क्षमा अहिंसा सरलता, गुरु सेवक जो होय।
अहंकार आदि जब दूर हों: चित्त समन्ता होय॥
ध्यान करे ब्रह्म का, सब को आत्मा जान।
ध्यान करे एकान्त में: ब्रह्म की करे पहचान॥
सब विष्यों से परे, सब में रहा समाय।
संग किसी के वह नहीं: निर्गुण गुण प्रकटाय॥
चराचर प्राणी मात्र के, अन्तर बाहिर सोय।
अति दूर अरु निकट है, सूक्ष्म: लिखे न कोय॥
भेद भाव कुछ भी नहीं, सब का कर उद्धार।
सबमें रच: पालन करे, सबका करे संहार॥
आदि अन्त से रहित है, सत् चित् रूप आनन्द।
अज्ञानी से है परे, ज्ञानी करें पसन्द॥
जोत में उसकी जोत है: अन्धकार के पार।
ज्ञानवन्त जगदीश है, सब का है आधार॥
स्तुति योग्य वह है प्रभु: महिमा अपरम्परा।
पारब्रह्म जगदीश वह, सब का पालन हार॥
जीवात्मा को इस देह में: न्यारा जाने जोय।
साक्षी भर्ता भोक्ता: ईश्वर निर्गुण होय॥

करे प्रकृति सब कर्म जीव अकर्ता होय।

जो जाने इस भेद को: आत्मज्ञानी है सोय॥

-प्रस्तुति : अनु जैन (भिवानी)

आप हम लोगों से इस संसार में क्या काम करवाना चाहते हैं ?

📖 श्री कृष्ण मूर्ति

सबसे पहले तो मैं यह स्पष्ट कर दूँ, कि मैं कुछ भी नहीं चाहता। आप इस संसार में पूरी तरह से जीएं। यह संसार अत्यंत अद्भुत रूप से सुंदर है। यह हमारा संसार है। यह हमारी पृथ्वी है, यह हमारे रहने के लिए है। परन्तु हम सही ढंग से जीते नहीं: हम संकीर्ण हैं, विभाजित हैं, चिन्तित और भयभीत इन्सान हैं। इसलिए हम: न सही अर्थों में जीते हैं, न सही अर्थों में सम्बन्धित हैं। हम अलगाव और निराशा से पीड़ित मानव हैं।

हम नहीं जानते कि हर्ष और आनन्द से जीने का:

क्या अर्थ है?

मेरी दृष्टि में कोई भी व्यक्ति इस ढंग से तभी जी सकता है: जब वह जीवन की समस्त नासमझियों (Ignorance) से मुक्त हो जाए। यह तभी सम्भव है: जब हम अपने सम्बन्धों के प्रति (फिर चाहे वे मानव के साथ हों या विचारों या निसर्ग या अन्य चीज के साथ हों), पूर्ण रूप से सजग हों। उन संबंधों के माध्यम से ही हम स्वयं को: अपने भय को, अपनी चिन्ताओं तथा निराशाओं को अपने अकेलेपन व प्रेम की कमी को समझ सकेंगे। व्यक्ति सिद्धांतों, शब्दों तथा अन्य लोगों के द्वारा दिये गये ज्ञान से भरा है: पर वह स्वयं के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता और इसीलिए वह नहीं जानता कि किस तरह जिये। □

एक ही साधे: सब सधे

📖 इंजीनियर पी. के. चौधरी

मनुष्य का जीवन पेड़ रूपी है। जिस प्रकार से बीज को खाद पानी मिलने से: पेड़ केवल आगे ही बढ़ता जाता है, उसी प्रकार से ईश्वर के ध्यान (Meditation) के अभ्यास द्वारा पेड़ रूपी मनुष्य के जीवन के हर अंग या पहलू को अग्रसर करने का जीवन रस: जिसे प्राप्त हो जाता है, वह अपने जीवन के अनन्त पहलुओं में धीरे-धीरे अग्रसर ही होता जाता है, जब तक उसके मन को परमात्मतत्व: पूर्ण रूप से प्राप्त न हो जाए। □

मोह: दुखों का कारण

📖 श्री सत्य नारायण शर्मा (09416164702)

बाहर की क्रियाओं की प्रतिक्रिया आन्तरिक जगत में अर्थात् मन पर: मोह कहलाती है। यह प्रतिक्रिया जितनी गहरी होती है: मोह उतना ज्यादा होता है।

ध्यान की साधना से उभरती हुई आत्मसत्ता मन में पिरोती है। और इसे मन में पिरोकर: मनुष्य जब बाहर के जगत में आता है, तब उभरी हुई आत्मसत्ता के कारण उसके व्यावहारिक जीवन में एक बदलाव आता है। **यही प्रेम है।** दूसरे शब्दों में हम कहेंगे कि

उभरती हुई आत्मसत्ता की प्रतिक्रिया;

मन में और बाहर के जगत में: प्रेम है।

मोह सारे दु:खों का कारण है। सारे दु:ख केवल मन को होते हैं। मन की अवस्था केवल दो बातों पर निर्भर करती है :-

1. या तो मन में पिरोयी हुई आत्मसत्ता: मन में पिरोये हुए संस्कारों पर हावी रहेगी।
2. या मन में पिरोए हुए संस्कार:

मन में पिरोयी हुई आत्मसत्ता पर हावी रहेंगे।

यदि पिरोए हुए संस्कार पिरोयी हुई आत्मत्ता पर हावी हो जायेंगे तो मनुष्य का जीवन दुःख से भरा रहेगा। इसका कारण यह है: कि बाहर की समस्त क्रियाओं का प्रभाव मन पर अवश्य पड़ता है। (दूसरे शब्दों में समस्त क्रियाओं की प्रतिक्रिया मन पर पड़ती है), और यह प्रतिक्रिया कितनी गहरी होगी: यह केवल संस्कारों के घनेपन पर निर्भर करेगा। संस्कार जितने ही ज्यादा घने होंगे: प्रतिक्रिया उतनी ही गहरी होगी। प्रतिक्रियाओं का गहरा होना: कुछ हद तक सांसारिक क्रियाओं पर भी निर्भर करता है।

अपने स्वभाव की हर तरह की क्रिया करना आसान होता है, लेकिन अपने मन को मार कर क्रिया करना मुश्किल होता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि मन पर क्रियाओं की प्रतिक्रिया कितनी गहरी है: यह दो बातों पर निर्भर करती है :-

- (1) क्रियाओं का अपना स्वभाव और
- (2) अन्दर के संस्कारों के घनापन की अवस्था। समाज में उन वस्तुओं और क्रियाओं की मान्यता ज्यादा है: जो मन पर गहरा असर डालने में समय लेते हैं।

बाहर की जिस क्रिया का प्रभाव जितना गहरा पड़ेगा, उस क्रिया से उतना ही लगाव हो जाएगा और यह लगाव ही मोह है।

मोह दो चेतनाओं के बीच में होता है। दो मनुष्यों के बीच हो सकता है, मनुष्य और जानवर के बीच हो सकता है, मनुष्य और स्थूल वस्तुओं के बीच भी हो सकता है: जैसे मकान, पैसा नशीले खान-पान की वस्तुएं इत्यादि।

मोह जितना ज्यादा होता है: जीवन उतना ही दुखदायी होता है।

जो साधक ध्यान का रास्ता पा जाते हैं: वे ध्यान के अभ्यास के माध्यम से संस्कारों का घनापन कम करने में सफल होने लगते हैं। संस्कार या बाहर

की क्रियाओं का अन्दर की दुनियां में पड़ी छाप: अन्दर की दुनियां का मैल है और यह ही दुःखों का कारण है। हमारे शरीर की थकावट केवल क्रियाओं के समय पैदा होती है। दूसरे शब्दों में बाहर की क्रियाओं की छाप, शरीर के आन्तरिक हिस्से में, ही थकावट कही जाती है और यह थकावट मात्र आराम से निकलती है। गहरे आराम (Meditation) से आत्मसत्ता उभरती है और मात्र आत्मसत्ता ही इस थकावट को निकाल सकती है। शरीर के आन्तरिक जगत का मैल का: आराम द्वारा निकलना हर मनुष्य महसूस कर रहा है। सत्य यह है कि आराम के समय उभरती हुई आत्मसत्ता हमारे मन और बुद्धि पर पड़े हुए प्रभावों को मिटा रही है।

ऐसा करने के लिए हमें आराम की उन, वैज्ञानिक विधियों की मदद लेनी चाहिए: जो कम से कम समय में मन को ज्यादा से ज्यादा गहराई तक अन्दर ले जा सके।

ध्यान अभ्यास के शुरू में हमारे आन्तरिक जगत में पड़े हुए छाप या प्रभाव, रुकावट पैदा करेंगे: लेकिन बढ़ते हुए अभ्यास के साथ मन ज्यों-ज्यों अन्दर जाना सीखेगा: त्यों-त्यों वह जिस गहराई तक चला जायेगा, उस गहराई तक की छाप मिट जाएगी और संस्कारों का घनापन कम हो जाएगा। ज्यों-ज्यों घनापन कम होगा: त्यों-त्यों बाहर की क्रियाओं का प्रभाव कम गहरा होगा। ज्यों-ज्यों बाहर की क्रियाओं की प्रतिक्रियाओं की गहराई कम होगी: त्यों-त्यों हमारा बाहर की क्रियाओं, शक्तियों और वस्तुओं से मोह कम होने लगेगा।

मोह केवल इन्द्रिय जगत की उन क्रियाओं, शक्तियों और वस्तुओं से होता है: जो मन को अच्छी लगती हैं: दूसरे शब्दों में जो सुखदायी होती हैं।

ध्यान के अभ्यास का समय ज्यों-ज्यों बढ़ता है: त्यों-त्यों मन में पिरोया हुआ आत्मसुख बढ़ता है और यह आत्मसुख दो काम करता है :-

- (1) पिरोये हुए संस्कारों का घनापन कम करके मन का झुकाव इन्द्रिय सुख की ओर कम करता है। और

(2) वह मन का झुकाव परमात्मा की ओर बढ़ता है। परमात्मा की ओर बढ़ा हुआ यह झुकाव मन में हर समय रहता है: इसलिए जिस समय इन्द्रिय सुख खत्म (या कम) होता है: यह अन्दर की ओर ज्यादा झुक जाता है और बाहरी वस्तुओं का मोह कम होने लगता है। □



ध्यान माला

श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-25 : या मानव संस्कार का, कर संचित अम्बार ।

अमित योनि में भ्रमण का, करे सृजित आधार ॥

मनुष्योत्तर प्राणियों के भाग्य के विधाता स्वयं ब्रह्म हैं; जो उन्हें केवल स्वाभाविक जीवन जीने की क्षमता देकर उनसे संस्कारों का निष्कासन कराते हैं और उनके विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। परन्तु मनुष्य योनि इतनी सौभाग्यशाली है कि यदि वह चाहे तो 'ध्यान' और स्वाभाविक क्रिया (सुमिरन और ध्यान अभ्यास) के माध्यम से अपने अनन्त संस्कारों को इसी जीवन में निकाल कर ब्रह्मस्वरूप हो सकता है। परन्तु

इस योनि के साथ एक और बात जुड़ी है: कि यदि वह ध्यान और स्वाभाविक जीवन जीने का मार्ग न पाने से बुद्धि के अनुशासन के अनुसार अपना जीवन बिताये, तो इससे पुराने संस्कार निकलने के स्थान पर और नये-नये संस्कार बनने और एकत्र होने लगते हैं।

धीरे-धीरे उनका अम्बार इतना बड़ा हो जाता है: कि मानव-योनि में उसके उत्थान की कोई संभावना नहीं रह जाती। तब करूणासागर भगवान उसके कल्याण का कार्य अपने हाथ में ले लेते हैं और उसे मनुष्योत्तर योनि में भेज कर और उससे केवल स्वाभाविक कार्य करा कर संस्कार निकालने का कार्य शुरू कर देते हैं। कहने का तात्पर्य यह है: कि मनुष्य यदि चाहे तो सही साधना अपना कर इसी जीवन में अपना सर्वोच्च विकास कर सकता है अथवा संस्कारों को और इक्ठ्ठा कर, अन्य योनियों में जन्म लेने की परिस्थिति पैदा कर सकता है। □

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

**-Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001**

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैंड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियाँ, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता

1618, अर्बन एस्टेट-II,

पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER